बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 243

बढ़ती आशंकाएं

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने सरकार के आर्थिक प्रदर्शन का बुधवार को जोरदार बचाव किया लेकिन केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर राजकोषीय स्थिति लगातार चिंताजनक होती जा रही है। अब तक समस्या का कोई हल भी नजर नहीं आ रहा है। गत सोमवार को संसद में पेश किए गए आंकड़े बताते हैं कि अक्टूबर माह में प्रत्यक्ष कर संग्रह में 17 फीसदी की गिरावट आई। इसका अर्थ यह हुआ कि वित्त वर्ष की पहली छमाही में कर संग्रह की वृद्धि दर 4.7 फीसदी से नीचे आ गई जबकि पूरे वर्ष के दौरान इसके 17 फीसदी रहने का अनुमान लगाया गया था। फिलहाल यह स्पष्ट नहीं है कि कॉर्पोरेशन कर दर में कटौती ने इस संग्रह को किस हद तक प्रभावित किया है। चूंकि वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के मोर्चे पर भी प्रदर्शन उत्साहजनक नहीं है इसलिए केंद्र सरकार के राजस्व संग्रह में भारी कमी आ सकती है। ऐसे में यह भी स्पष्ट नहीं है कि केंद्र सरकार चालू वर्ष के राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को कैसे पूरा करेगी। व्यय को कम करना या उसे टालना भी एक विकल्प है लेकिन इसका मध्यम अवधि में देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा असर होगा।

इस बीच राज्यों की शिकायत है कि जीएसटी क्षतिपूर्ति जारी करने में देर की जा रही है। जानकारी के मुताबिक इसकी बकाया राशि 20,000 करोड़ रुपये से अधिक है। यदि जीएसटी राजस्व की वृद्धि 14 फीसदी से कम रहती है तो केंद्र को राज्यों की क्षतिपूर्ति करनी होगी। इसका केंद्र की वित्तीय स्थिति पर बुरा असर होगा। जीएसटी के मोर्चे पर हर्जाने की गारंटी के बावजूद राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति खराब है क्योंकि मंदी ने उत्पाद और बिक्री कर संग्रह को भी प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप एक अनुमान के मुताबिक राज्य सरकारों की उधारी चालू वर्ष में 20 फीसदी तक बढ़ सकती है। ऐसे में काफी संभावना है कि राज्यों का बढ़ा हुआ राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद के 2.6 फीसदी के बजट अनुमान से अधिक हो जाए। साथ ही राज्य सरकार के व्यय की गुणवत्ता में हाल के वर्षों में गिरावट आई है क्योंकि राजस्व व्यय बढ़ा है। ऐसा आंशिक तौर पर कृषि ऋण माफी जैसी लोकलुभावन योजनाओं के कारण हुआ। राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति बताती है कि निकट भविष्य में इस रुझान में कोई बदलाव नहीं आने वाला। राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति पर पड़ने वाले दबाव का असर व्यापक अर्थव्यवस्था पर पड़ सकता है क्योंकि सरकार के पूंजीगत व्यय के दो तिहाई के लिए राज्य उत्तरदायी होते हैं। चालू वर्ष में राज्यों के पूंजीगत व्यय में भी काफी गिरावट आने की बात देखी गई है। इसका असर निकट भविष्य में मांग और संभावित वृद्धि दोनों पर होगा। इतना ही नहीं उच्च सरकारी ऋण भी कम ब्याज दरों के पारेषण को प्रभावित करेगा। बल्कि सरकारी घाटे में अहम वृद्धि मौद्रिक समायोजन की संभावनाओं को वैसे भी सीमित करती है।

चूंकि निकट भविष्य में अर्थव्यवस्था के स्थायी रूप से उच्च वृद्धि दर के मार्ग पर लौटने की संभावना नहीं है इसलिए सरकार को राजकोषीय स्थिति की व्यापक समीक्षा करनी चाहिए। केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर अगले कुछ सप्ताह में ऐसा किया जाना चाहिए और इसमें विशेषज्ञ समूह की सहायता ली जानी चाहिए। इससे न केवल सरकार की वित्तीय स्थिति का सही आकलन होगा बल्कि नीति निर्माताओं को राजकोषीय खाका नये सिरे से खींचने का अवसर भी मिलेगा। सरकार को जीएसटी व्यवस्था के तमाम लंबित मसलों को हल करना चाहिए ताकि कर संग्रह में सुधार हो सके। यह स्वीकार करना होगा कि व्यय को स्थगित रखने और जवाबदेहियों को सरकारी उपक्रमों पर टालने से समस्या हल नहीं होगी। इससे केवल भ्रम पैदा होगा और सरकार की विश्वसनीयता पर सवाल उठेगा।

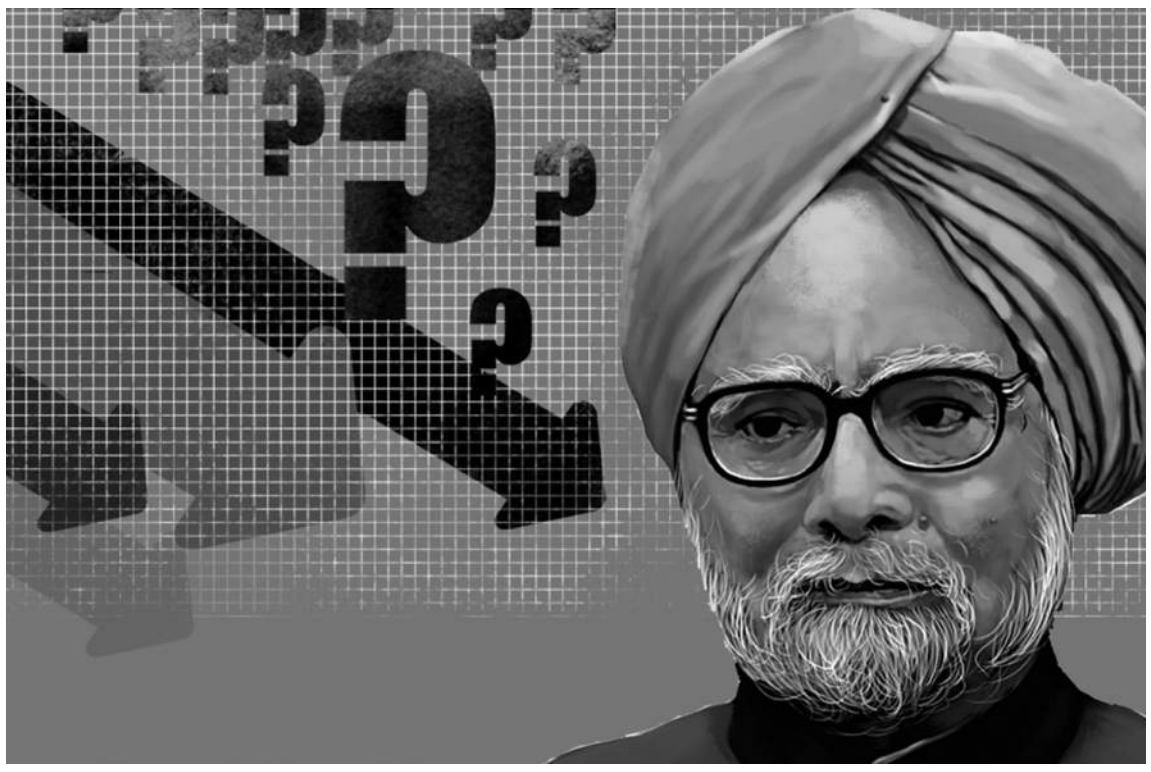

अजय मोहंती

डॉ. मनमोहन सिंह का बेसुरा गान

हम आज जो कीमत चुका रहे हैं उसमें पिछली सरकारों की गलत नीतियों की भी भूमिका है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं **देवाशिष बसु**

वर्ष 2014 के आम चुनाव के पूर्व देश के मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को 'मौन' मोहन सिंह कहकर पुकारा था। डॉ. सिंह का मजाक उड़ाते हुए कहा जाता था कि वह देश में घट रही तमाम घटनाओं पर खामोशी का रुख अपनाए रहते हैं। इनमें भ्रष्टाचार के मामलों (राष्ट्रमंडल खेल, एयर इंडिया, दूरसंचार स्पेक्ट्रम आवंटन, कोयल और लोहा) से लेकर नीतिगत पंगुता और भूमि हथियाने के मामलों के साथ-साथ निर्भया जैसे मामलों से ठीक से न निपट पाना शामिल था। मोदी ने उस वक्त जनता के मिजाज को सही ढंग से समझा।

अब मोदी के चुप रहने की बारी है। डॉ. सिंह ने समाचार पत्र द हिंदू में आलेख लिखकर मोदी सरकार के आर्थिक प्रदर्शन पर निशाना साधा है। उन्होंने लिखा है कि खलू कीमतों पर जीडीपी वृद्धि दर 15 फीसदी के निचले स्तर पर है, आम परिवारों की खपत चार दशक के निचले स्तर पर है, बेरोजगारी 45 वर्ष के उच्चतम स्तर पर है, बैंकों का फंसा हुआ कर्ज अब तक के उच्चतम स्तर पर है, बिजली उत्पादन की वृद्धि 15 साल में सबसे धीमी है वगैरह...वगैरह। हालांकि मैं मोदी सरकार की विभिन्न योजनाओं का आलोचक रहा हूं लेकिन देश की आर्थिक परिस्थितियों को लेकर सिंह द्वारा दी जा रही वजहें और उनके द्वारा सुझाए जा रहे नीतिगत सुझाव पाखंड प्रतीत हो रहे हैं।

डॉ. सिंह कहते हैं कि सामाजिक मोर्चे पर आपसी विश्वास और आत्मविश्वास एकदम निचले स्तर पर है और इसका असर आर्थिक वृद्धि पर भी पड़ रहा है। फिलहाल सामाजिक भरोसे का हमारा तानाबाना पूरी तरह ध्वस्त हो चुका है। उद्योगपति सरकारी अधिकारियों द्वारा प्रताड़ित होने की आशंका में जी रहे हैं, बैंकर नए ऋण देना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें आशंका है कि उनको प्रताड़ित किया जा सकता है। उद्योगपति नई परियोजनाएं शुरू नहीं करना चाहते, तकनीकी क्षेत्र के स्टार्टअप निरंतर निगरानी और आशंका में जी रहे हैं जबकि नीति निर्माता सच बोलने या ईमानदार नीतिगत चर्चाओं से बच रहे हैं। डर और अविश्वास का असर आर्थिक लेनदेन पर पड़ता है और आगे चलकर यह मंदी का सबब बनता है।

चयनित पूर्वग्रह

यदि पिछली सरकारों से तुलना की जाए तो यह तस्वीर काफी अतिरंजित है। खासकर अगर सन 1991-96 की कांग्रेस सरकार से तुलना की जाए, जब सिंह वित्त मंत्री हुआ करते थे। सन 2004 से 2014 तक के हालात भी इससे अलग नहीं थे। उस वक्त सिंह प्रधानमंत्री थे। सिंह की दलील में दो दिक्कतें हैं: वह चुनिंदा उठाते हैं और हालिया घटनाओं की बात करते हैं। पहला, भारतीय नागरिक और कारोबारी हमेशा से सरकार की दया पर रहे हैं। सरकार के पास उनको प्रताड़ित करने के सैकड़ों तरीके हैं। मोदी सरकार कुछ अलग नहीं कर रही है। सन 2010 में ही मैंने टैक्सटॉर्शन (करवसूली को हथियार बनाकर परेशान करना) जैसा शब्द गढ़ा था। सन 2013 में डॉ. सिंह के नेतृत्व में ही पुरातनपंथी कंपनी अधिनियम बना। कांग्रेस के कार्यकाल में कानूनों को पुरानी तिथि से लागू करने और जनरल ऐंटी अवॉयडेंस नियमों को याद कीजिए। वह भरोसे का कोई बहुत अच्छा उदाहरण नहीं पेश करते।

आम जनता को भले ही पता नहीं हो लेकिन डॉ. सिंह को यह पता होगा कि आर्थिक कदमों के परिणाम थोड़ा विलंब से सामने आते हैं। स्पष्ट है कि आज जो हालात हैं उनका संबंध वर्षों पूर्व उठाए गए कदमों से होगा। हम आज जो कीमत चुका रहे हैं वह केवल मोदी सरकार की बदौलत नहीं है बल्कि उसमें पिछली सरकारों की गलत नीतियों की भी भूमिका है। मौजूदा आर्थिक मंदी का एक बड़ा कारण सरकारी बैंकों द्वारा बड़े पैमाने पर भ्रष्ट तरीके से दिए जाने वाले ऋण का बंद होना भी है। 10 लाख करोड़ रुपये के फंसे कर्ज से अंदाजा लगाया जा सकता है कि पहले किस प्रकार ऋण दिया जाता था।

व्यवस्था से नकदी के घटने के लिए मुझे इसके अलावा कोई बड़ी वजह समझ में नहीं आती। इस गलत आवंटन के चलते सरकार को आबादी के उत्पादक हिस्से से अधिकाधिक संसाधन जुटाने पड़े। इनमें निजी कारोबारी और परिवार शामिल हैं। इतना ही नहीं विकृत पूंजीवादियों और बैंकरों द्वारा की गई इन गड़बड़ियों के जवाबदेह मोदी नहीं बल्कि पिछली सरकारों के वित्त मंत्री और प्रधानमंत्री भी रहे हैं। आरबीआई के विभिन्न गवर्नर भी इससे बरी नहीं हैं। बल्कि मोदी ने तो डिफॉल्टरों पर लगाम लगाई है। कांग्रेस सरकार के अधीन उन्हें बैंकों से और पैसा मिला होता। मोदी के कार्यकाल में यह संभव नहीं।

नीतिगत उपचार

डॉ. सिंह को लगता है कि समाज की आर्थिक भागीदारी में विश्वास और भरोसा बहाल करके निजी निवेश को बढ़ावा दिया जा सकता है और इस प्रकार देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है। यह झूठ है। अकेले भरोसे और विश्वास से आर्थिक वृद्धि नहीं हासिल होती। प्रतिस्पर्धा, पारदर्शिता और निष्पक्षता के साथ बाजार में प्रवेश और निर्गम के सहज मार्ग से ऐसा होता है। मुझे याद नहीं आता कि सिंह सरकार ने ऐसा एक भी कदम उठाया हो जो इस व्यवस्था को आगे ले जाने वाला हो। यह भूलना आसान है कि सन 1990 में जब वह वित्त मंत्री थे तब भारत में प्रतिभूति घोटाला हुआ था और बिना नियमन के सार्वजनिक निर्गम के माध्यम से आम घरों को लूटा गया था। इसके अलावा भी तमाम वित्तीय घोटाले हुए थे। सरकारी बैंकों की भ्रष्ट ऋण व्यवस्था के तहत सरकारी धन की लूट हुई। दूरसंचार लाइसेंसिंग, एनरॉन और अन्य निजी बिजली परियोजनाओं में शासन की विफलता सामने आई। इन तमाम वजहों से मुद्रास्फीति दो अंकों में पहुंच गई। जबकि नेतृत्व एक अर्थशास्त्री के हाथ में था।

इन तमाम तरह के कुप्रबंधन के चलते अर्थव्यवस्था बहुत बुरी स्थिति में पहुंच गई। वहां से उबरने में छह वर्ष लगे। फंसे हुए कर्ज से संबंधित एक नया कानून बनाना पड़ा लेकिन वह भी निष्प्रभावी साबित हुआ। वर्ष 2004-2014 की अवधि में बहुत व्यापक कुप्रबंधन देखने को मिला लेकिन वैश्विक संसाधन और चीन के कारण हो रहे नकदी लाभ की उपलब्धियों ने कमियों को ढक लिया। प्रतिस्पर्धा के बजाय विकृत पूंजीवाद पनपा, पारदर्शिता की जगह अस्पष्टता ने घेरे रखी। स्वच्छ और स्पष्ट नियमों के बजाय जटिल नियम बने। कुल मिलाकर व्यापक भ्रष्टाचार के कारण ही लोगों ने कांग्रेस को सत्ता से हटाया। डॉ. सिंह द्वारा की गई आलोचना में कांग्रेस की कमियों को छिपाने की भावना अधिक है, बजाय कि नई व्यवस्था की कमियां उजागर करने के।

शीर्ष अदालत की जड़ता का सभी अदालतों पर असर पड़ता

अदालती आईना

एम जे एंटनी

सर्वोच्च अदालत तुलनात्मक रूप से शांतिपूर्ण दौर में नजर आ रही है। बीते महीनों में नजर आए तमाम मुद्दे अब शांत हो चुके हैं। न्यायाधीशों की संख्या भी कम थी। अगले 17 महीनों के कार्यकाल वाले नए मुख्य न्यायाधीश संविधान पीठ को प्रेषित पुराने मामलों को अहमियत दे सकते हैं।

हम सबने उन अप्रचलित कानूनों के बारे में सुना है जिन्हें सरकार समय-समय पर हटाती रहती है। ऐसे दो पुराने कानून तो विलक्षण हैं: विमान अधिनियम 1934 के मुताबिक पतंग उड़ाने के लिए भी आपको लाइसेंस की जरूरत होती है। इसी तरह भारत खजाना अधिनियम 1878 के मुताबिक मिट्टी के भीतर मौजूद कोई भी मूल्यवान वस्तु और 10 रुपये मूल्य वाली चीज को खजाना माना जाता है। सरकार की कोशिशों के बावजूद ऐसे कई पुराने कानून अब भी बदस्तूर लागू हैं। हालांकि कई नए कानूनों की तरह ये कानून अभी केवल कागजों में ही लागू हैं, लिहाजा वे तुलनात्मक रूप से नुकसानदायक नहीं हैं। इन कानूनों से जुड़े संवैधानिक सवालों पर उच्चतम न्यायालय से आखिरी राय का इंतजार है। पुराने दौर के इन मुकदमों में कई गंभीर मुद्दे हैं। इन कानूनों को विलंबित अवसान में रखना कानून के साथ खिलवाड़ करने जैसा है जिससे गलत आदेश आते हैं और नागरिक उसकी चपेट में आते हैं।

उच्चतम न्यायालय ने कुछ हफ्ते पहले अपने एक फैसले में ऐसा ही एक ज्वलंत खुलासा किया। भूमि अधिग्रहण मामले में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के एक निर्णय के खिलाफ दायर अपीलों का निपटारा करते समय संविधान के अनुच्छेद 31(सी) की वैधानिकता काफी अहम रही। हालांकि न्यायालय ने यह फैसला नहीं किया है कि 1981 के मिनर्वा मिल्स वाद में निष्प्रभावी किए जाने के बाद भी क्या यह प्रावधान लागू है? यह सवाल 1996 से ही खड़ा हुआ था। एक पीठ ने इस मसले को पांच सदस्यों के संविधान पीठ को प्रेषित कर दिया। लेकिन यह मामला इसी तरह आगे बढ़ते हुए नौ न्यायाधीशों के पीठ तक जा पहुंचा। मुद्दा संपत्ति के मौलिक अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के परस्पर संबंध से जुड़ा है। वैसे ऐसे मामले बार-बार अदालतों में आते रहते हैं।

बहरहाल हम जिस भारत संघ बनाम तरसेम सिंह मामले का जिक्र कर रहे हैं, उसमें अनुच्छेद 31-सी को लागू करने पर जब विरोध किया गया तो न्यायालय के पास भी इसकी वैधानिकता परखने का कोई नियम नहीं था क्योंकि वर्षों से इस पर विचार ही नहीं हुआ था। न्यायाधीशों ने फैसले में लिखा, 'हम इस मामले के मद्देनजर यह मान लेंगे कि अनुच्छेद 31-सी मौलिक क्रियान्वयन की ही तरह अब भी लागू है और एक समुदाय के भौतिक संसाधनों में निजी संपत्ति को भी जोड़ा जाएगा।' कोई अनुमान ही लगा सकता है कि ऐसे कितने और मामलों में भी न्यायाधीशों ने धारणाओं के आधार पर ऐसे मुश्किल हालात में खुद को अलग किया है। लेकिन अदालत के अनिर्णय की वजह से अपने मुकदमे हारने वाले याचियों की हालत तो इससे भी बुरी है।

यह केवल एक संवैधानिक प्रावधान के बारे में है। ऐसे मुकदमों की संख्या जानकर अचरज एवं सदमा लगेगा। पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठों के समक्ष ऐसे 250 मामले अपने निपटान का इंतजार कर रहे हैं। उनमें से कुछ मामले 1992 के बाद से ही अंतिम सुनवाई की बाट जोह रहे हैं। ऐसे 11 मामले सात न्यायाधीशों के पीठ के सुपुर्द किए जा चुके हैं। वहीं 130 से भी अधिक मामले ऐसे हैं जिनका निपटारा नौ न्यायाधीशों के पीठ को करना है। अगर एक संविधान पीठ नियमित तौर पर भी इन मामलों की सुनवाई करती है तो इनके निपटारे में कई साल लग जाएंगे।

इन मामलों के विषय राष्ट्रीय जीवन के हरेक पहलू, खासकर वित्त एवं अर्थशास्त्र से जुड़े हुए हैं। सरकार अब एक श्रम संहिता तैयार कर रही है लेकिन औद्योगिक विवाद अधिनियम में दी गई 'उद्योग' की परिभाषा अब तक तय नहीं हो पाई है। यह अकल्पनीय है कि न्यायाधीशों के मन में उद्योग की संकल्पित अवधारणा के आधार पर न जाने कितने कामगारों ने मुकदमे जीते और हारे हैं। फिलहाल 520 श्रम विवाद अदालत के समक्ष लंबित हैं। इसी तरह प्रत्यक्ष कर के 3,000 से भी अधिक मामले और अप्रत्यक्ष कर के 520 मामले विचाराधीन हैं। उनमें से कई मामले उन कानूनों से भी जुड़े होंगे जो संविधान पीठों को भेजे जा चुके हैं लेकिन कभी उन पर बहस ही नहीं हुई। पहले के मुख्य न्यायाधीश राजनीतिक रूप से संवेदनशील मामलों को प्राथमिकता देते रहे हैं और उन्होंने आर्थिक मामलों को नजरअंदाज किया है। इससे ऐसी धारणा बनती गई है कि इस देश में कारोबार करने की राह में बड़ी बाधा न्यायपालिका भी है। उच्चतम न्यायालय की जड़ता नीचे की सभी अदालतों के फैसलों को प्रभावित करती है।

सर्वोच्च अदालत तुलनात्मक रूप से शांतिपूर्ण दौर में नजर आ रही है। बीते महीनों में नजर आए तमाम मुद्दे अब शांत हो चुके हैं। न्यायाधीशों की संख्या भी कम थी। अगले 17 महीनों के कार्यकाल वाले नए मुख्य न्यायाधीश संविधान पीठ को प्रेषित पुराने मामलों को अहमियत दे सकते हैं। अगर वह इस दिशा में पहल करते हैं तो आने वाले वर्षों के लिए एक प्रक्रियागत दृष्टांत साबित होगा।

कानाफूसी

प्याज की माला

देश के कुछ हिस्सों में प्याज की कीमत 100 रुपये प्रति किलोग्राम से ऊपर निकलने के बाद बिहार में विपक्षी दल राष्ट्रीय जनता दल के विधायकों ने प्याज की माला पहनकर विरोध प्रदर्शन किया। वैशाली जिले के विधायक शिव चंद्र राम ने नारे लगाए और मुख्यमंत्री नीतीश कुमार पर हमला करते हुए कहा कि उन्होंने स्टॉल लगाकर 35 रुपये किलो की दर पर प्याज बेचने का झूठा वादा किया था। उन्होंने कहा कि उनका विरोध इसलिए है ताकि नीतीश कुमार मजबूर होकर कुछ कदम उठाएं। इससे पहले दिल्ली में कांग्रेस के कुछ नेताओं ने प्याज की माला पहनकर राज्य सचिवालय के समक्ष विरोध किया था। प्याज के दाम बढ़ने पर उनकी शिकायत थी कि राज्य सरकार हालात को नियंत्रण में नहीं रख सकी। गौरतलब है कि बारिश के कारण मंडियों में प्याज की आवक कम होने से इसके दाम में भारी बढ़ोतरी देखी जा रही है।

बेकाबू हालात

उत्तर प्रदेश कांग्रेस में हालात नियंत्रण में आते नहीं दिख रहे हैं। अब रायबरेली की कांग्रेस विधायक अदिति सिंह निशाने पर हैं। पार्टी ने उत्तर प्रदेश विधानसभा में एक याचिका दाखिल करके कहा है कि सिंह को सदस्यता के अयोग्य घोषित किया जाए। अदिति सिंह ने 2 अक्टूबर को पार्टी व्हिप का उल्लंघन किया था और उस विशेष सत्र में शामिल हुई थीं जिसका पार्टी ने बहिष्कार किया था। इसके पश्चात उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। कांग्रेस विधायी दल की नेता आराधना सिंह के अनुसार अदिति सिंह ने इस नोटिस का जवाब नहीं दिया। इससे पहले गत रविवार को पार्टी ने अपने 10 वरिष्ठ नेताओं को पार्टी से निष्कासित कर दिया था क्योंकि उन्होंने सार्वजनिक मंच से पार्टी नेतृत्व का विरोध किया था और पार्टी की छवि धूमिल की थी।

अदिति सिंह

आपका पक्ष

बढ़ती जनसंख्या समस्याओं की वजह

देश की बढ़ती आबादी पर्यावरण एवं पारिस्थितिक तंत्र को अत्यधिक प्रभावित कर रही है। पर्यावरण की अधिकांश समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के कारण ही हैं। आर्थिक, कृषि एवं औद्योगिक विकास जनसंख्या की वृद्धि के कारण देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रही हैं। जनसंख्या वृद्धि से अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इससे पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट आती है। औद्योगिक तथा तकनीक का विकास ही देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है लेकिन इनके विकास से भी पर्यावरण में जल, वायु, भूमि तथा ध्वनि प्रदूषण हो जाता है। जनसंख्या की वृद्धि से जीवन स्तर गिर रहा है जिसके कारण आर्थिक स्तर भी गिर रहा है। भोजन तथा खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता भी प्रभावित हो रही है। जनसंख्या वृद्धि से नगरीकरण अधिक हो रहा है अर्थात नगरों तथा कस्बों का विस्तार हो रहा है जिससे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण अधिक हो रहा है। उच्च शिक्षा की सुविधाओं में भी कमी आ रही है क्योंकि जिस गति से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उस गति से शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि नहीं हो पा रही है। राजनीति, धर्म, समाज तथा संस्कृति के क्षेत्र में भी वास्तविक मूल्यों का पतन हो रहा है। इसलिए आज नैतिक शिक्षा, मूल्यों की शिक्षा

देश की बढ़ती जनसंख्या पर लगाम लगाने के लिए सरकार को नीतिगत उपाय करने चाहिए

की आवश्यकता है। मनुष्य भी शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रदूषित हो रहा है जिसका प्रमुख कारण जनसंख्या में वृद्धि है। जनसंख्या वृद्धि के कारण पर्यावरण में पर्यावरणीय क्षति की गंभीर समस्या का कोई सरल समाधान नहीं है। अगर जनता का सहयोग प्राप्त हो तो स्थिति पर नियंत्रण पाना संभव है। देश-विदेश में किए गए अध्ययन यह बताते हैं कि लोग इस समस्या की व्यापकता से परिचित नहीं हैं। अत: सही दिशा में पहला कदम लोगों की आवश्यक जागरूकता पैदा करना है। इसके बाद लोगों के मूल्यों में परिवर्तन करके उनके व्यवहार को पर्यावरण के अनुकूल बनाया जा सकता है।

हरिओम हंसराज, सारण

तकनीक के साथ बच्चों की पढ़ाई

तकनीक के इस दौर में छोटे-छोटे बच्चों की पढ़ाई भी तकनीक के साथ हो रही है। लेकिन इसके दुष्परिणामों को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। आज अभिभावक बच्चों से पीछा छुड़ाने के लिए मोबाइल फोन पकड़ा देते हैं जिससे भविष्य में दुष्परिणाम सामने आ सकते हैं। स्मार्टफोन के बढ़ते प्रचलन से इसके नकारात्मक प्रभावों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। छोटे बच्चे अगर लंबे समय तक मोबाइल की स्क्रीन पर देखते रहे तो आंखों की रोशनी कम हो सकती है। अनेक छोटे-छोटे बच्चों को चश्मा लग चुका है। यह शायद टीवी अधिक देखने या फिर मोबाइल के अधिक इस्तेमाल के कारण भी हो सकता है। इसके अलावा मोबाइल फोन की तरंगों से भी नुकसान हो सकता है। मोबाइल फोन को सीने के पास रखने से मना किया जाता है क्योंकि इससे हृदय को नुकसान पहुंच सकता है। आने वाले समय में 5जी तकनीक शुरू हो जाएगी जिसे कई मंचों पर खतरनाक बताया गया है। अत: बच्चों की पढ़ाई एक सीमा तक तकनीक के साथ ठीक है। अधिकता से कहीं बच्चों का भविष्य अंधेरे में न पड़ जाए।

विशाल कुमार, नई दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।